विष्णुपुराण में कर्मकाण्ड की भाषा

प्रो. वैद्यनाथ सरस्वती

प्रथम अंश

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो अपने वर्ग के अतिरिक्त दूसरों से भी संभाषण कर सकता है। कर्मकाण्ड एक सांकेतिक भाषा है जिसके द्वारा मनुष्य, प्रकृति और परमेश्वर के साथ संवाद का आदान प्रदान करता है और सुसंस्कृत बनता है। इसके चार अंग हैं—मन्त्र, मुद्रा, ध्वनि और कर्मकाण्डी पुरोहित। इनमें से प्रत्येक के अपने अपने कार्य हैं, अपने अपने स्वरूप।

मन्त्र-यह सामान्य भाषा का शब्द नहीं है। इसका प्रयोजन है मनुष्य और देवता के बीच के संवाद का आदान प्रदान करना। दिव्य द्रष्टा मनीषियों ने शब्दब्रह्म की व्याख्या की है। प्रसिद्ध वैयाकरण भतृहरि के अनुसार शब्द की चार अवस्थायें हैं—परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। इनमें से परा अवस्था वर्णनातीत है। इस विशेष अवस्था में आने पर साधक मन और बुद्धि से परे होकर परम पद प्राप्त करता है। पश्यन्ती की अवस्था में साधक शब्द का पृथक्करण नहीं कर पाता। इस अवस्था को प्रतिभा भी कहते हैं। सबसे वाह्य रूप है वैखरी का जिसमें व्यक्ति शब्द का स्पष्ट उच्चारण करता है जिसे सुनने वाले सुनते हैं। यह उच्चारण करने के अंग तथा प्राण से सम्बन्धित है। इसी के द्वारा उच्चारण का क्रम बनता है। वैखरी मनुष्य की वाणी तक ही सीमित नहीं है, इसमें गाड़ी की धुरी की ध्वनि तथा वीणा, बांसुरी अथवा ढोल की आवाज सम्मिलित है। वैखरी का क्रम पूर्ण रूप से विकसित रहता है, यही इसकी मुख्य विशेषता है। अन्तर्मुखी होने पर शब्द की एक अवस्था है, जिसे मध्यमा कहते हैं और जो उच्चारण के अंग से नहीं अपितु मुख्य रूप से मन और बुद्धि के साथ सम्बद्ध है। वस्तुत: यह शब्द उच्चारण करके के पूर्व की अवस्था है। चूंकि इसमें वास्तविक उच्चारण नहीं होता अत: मध्यमा का ऐतिहासिक कालक्रम नहीं बनता। फिर भी यह सर्वथा क्रमविहीन नहीं है, इसमें सूक्ष्म रूप से क्रम व्याप्त रहता है। इससे परे पश्यन्ती की अवस्था है जिसके अपरिणाम भेद हैं। इसके भी दो प्रकार हैं—उच्च और निम्न। उच्चकोटि (परम रूप) वर्णनातीत है। व्याकरण की इस तात्त्विक मीमांसा से मंत्र की संरचना तथा इसके महत्त्व को अच्छी तरह समझा जा सकता है—वैसे ही जैसे शिशु के जन्म के पूर्व ही माता के स्तन में दूध भर आता है।

वैदिक मंत्र आद्य हैं। इनकी रचना न मनुष्य ने की है और न देवता ने। न यह देवता संदेशवाहक ही है। वस्तुत: यह स्वयं में देवता है। तांत्रिक परम्परा में मंत्र को देवता के रूप में ही लिया गया है। मंत्र अक्षरों से बना है। अक्षर और अक्षरमाला शब्द का ब्रह्मस्वरूप है। साधारणतया जिसे हम मंत्र कहते हैं वह साधना के सन्दर्भ में अक्षर है। यह शब्द के अनुक्रम से बनता है। मंत्र के वर्ण, नाद, बिन्दु, स्वर और व्यञ्जन से देवता का भिन्न-भिन्न स्वरूप बनता है। देवता की विभूतियाँ वर्ण में ही अन्तर्निष्ठ रहती हैं। अत: यह सिद्ध होता है कि मंत्र मनुष्यों के चिन्तन से बनता नहीं प्रत्युत एक विशेष प्रकार की ध्वन्यात्मक चेतना है। मंत्र न प्रार्थना है और आत्म निवेदन। प्रार्थना में वही और उतना ही संप्रेषित होता है जो शब्दसाधक ने चुना है और जो इसका वास्तविक अर्थ है। अत: मंत्र मात्र शब्द ही नहीं है जिसके द्वारा देवता को कुछ कहा जाय। यदि ऐसा होता तो साधक अपनी मातृभाषा का प्रयोग कर अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता।

तांत्रिक शास्त्रों में सान्ध्यभाषा के शब्द यदा कदा आए हैं जिनका दोहरा अर्थ होता है जैसे, पक्ष-भग, वज्र-लिङ्ग, रवि (सूर्य)-रसना (पिंगला), शशी (चन्द्र)-ललना (इड़ा), वोधिचित्त-शुक्र, तरुणी-महामुद्रा, समरस-

चित्त। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि संदर्भ के अनुसार ही सान्ध्यभाषा का शब्द भीतर और बाहर का अर्थ निर्दिष्ट करता है।

मुद्रा–यह कर्मकाण्ड का शब्द है जो हाथ और शरीर के संकेत के लिए प्रयुक्त होता है। इसके गूढअर्थ विभिन्न कर्मकाण्डों में अलग-अलग है, परन्तु सभी संस्कृतियों में अर्थ रहस्यमय है। तांत्रिक कर्मकाण्ड से भिन्न परम्परा में मुद्रा का अर्थ है हस्त संकेत। शास्त्रीय नृत्य में मुद्रा का अर्थ है विशेष भावों का हस्त संकेत। बौद्ध तंत्र में मुद्रा का अर्थ है समाधिस्थ होने के लिए स्त्री सहभागी। कर्मकाण्ड में मुद्रा के कई प्रकार हैं और प्रत्येक के अपने-अपने नाम हैं जैसे, धेनु मुद्रा, योनि मुद्रा, आह्वानी मुद्रा, स्थापनी मुद्रा, समारोधिनी मुद्रा, सम्मुखीकरणी मुद्रा आदि वाममार्गी योगी कुंडली के प्रयोग में इन मुद्राओं का प्रयोग करते हैं। शरीर के सन्दर्भ में भी अनेक प्रकार की मुद्रायें हैं। योगिक क्रिया में आसन अथवा योगासन का महत्व है। हस्त मुद्रायें भी कई प्रकार की हैं। जैसे—पुरोहित, संत और देवता की अभय मुद्रा। प्रार्थना मुद्रा और सूर्य नमस्कार दोनों हाथों से किये जाते हैं।

ध्वनि–यह कर्मकाण्ड का तीसरा अंगभूत है। तांत्रिक अवधारणा के अनुसार निखिल ब्रह्माण्ड में शक्ति व्याप्त है जिसे ध्वनि, नाद, प्राण आदि कहते हैं। जिस प्रकार बाह्य अन्तरिक्ष में वायु के द्वारा ध्वनि की तरंगे उत्पन्न होती हैं उसी प्रकार जीव में भी प्राणवायु चलती है। शब्द जो सर्वप्रथम मूलाधार में प्रकट होता है वही वस्तुत: शक्ति है जो जीव को जीवन देती है। जीव में जो अन्दर और बाहर की सांस चलती है वही महामंत्र है। वही अजपा मंत्र अथवा हंस है। इसे अजपा इसलिए कहते हैं क्योंकि जीव बिना किसी प्रयास के इसे करता रहता है। यह बिना प्रयास की ध्वनि मधुमक्खियों के भिनभिनाने की तरह है। यह ध्वनि परा अवस्था ही है, फिर पश्यन्ती जो सूक्ष्म बनकर मध्यमा और स्थूल बनकर वैखरी बन जाती है।

पुरोहित–यह कर्मकाण्ड का चतुर्थ अंग है जिसके द्वारा कार्य सम्पादित किया जाता है। पुरोहित कर्मकाण्ड विशेषज्ञ है। उसके और कर्ता के बीच संप्रेषण से ही यज्ञादि कर्म होते हैं। उदाहरणार्थ, पुरोहित कहता है 'इस प्रकार का मंत्र उच्चारण करो', 'ध्रुवतारा को देखो', 'गाय को कर्मस्थल पर लाओ' आदि। इस प्रकार की अन्योन्य क्रियाओं में कर्त्ता और पुरोहित के बीच सामान्य भाषा का प्रयोग होता है। परन्तु मंत्र आदि के लिए मूल (संस्कृत) भाषा का ही प्रयोग होता है।

इन चारों अंगों के संयोग से कर्मकाण्ड की भाषा बनती है, जिससे एक अतिविशिष्ट संस्कृति का सिद्धान्त प्रतिपादित होता है।

द्वितीय अंश

भारतीय संस्कृति की आधारशिला है वेद, उपनिषद् और पुराण। आज वेद और उपनिषद् विशेषज्ञों तक सीमित है, किन्तु पुराण सामान्य लोगों में भी क्रियात्मक है। पुराण के पांच लक्ष्ण कहे गये हैं—सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर तथा वंशानुचरित। पुराण सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का आख्यान है। अष्टादश महापुराणों में **विष्णुपुराण** का स्थान बहुत ऊँचा है। इसमें कर्मकाण्ड, ज्योतिष, राजवंश, भूगोल और श्रीकृष्ण चरित्र का बड़ा ही अनूठा और विशद वर्णन किया गया है। भक्ति और ज्ञान की धारा तो सर्वत्र प्रवाहित हो ही रही है, साथ-साथ कर्मकाण्ड पक्ष भी बहुत विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में यज्ञ, तप, जप और संस्कारादि कर्म मुख्य आख्यान हैं।

यज्ञ-विष्णुपुराण के प्रारम्भ में ही यज्ञ का सन्दर्भ है। विश्वामित्रजी की प्रेरणा से पराशरजी के पिता को राक्षस ने खा लिया। राक्षसों को ध्वंस करने के लिए पराशरजी ने यज्ञ करना आरम्भ किया। उस यज्ञ में सैकड़ों राक्षस जलकर भस्म हो गये। दुष्ट प्रकृति राजा वेन ने घोषणा कर दी कि 'भगवान् यज्ञपुरुष मैं ही हूँ, मुझसे अतिरिक्त यज्ञ का

भोक्ता और स्वामी हो ही कौन सकता है? इसलिए कभी कोई यज्ञ, दान और हवन आदि न करे।' ऋषियों ने उसे बारम्बार समझाने का प्रयास किया कि सारा जगत् हवि का ही परिणाम है और श्रीविष्णु भगवान् परमपुरुष, यज्ञपुरुष, यज्ञ और योगेश्वर हैं। जब वेन ने यज्ञ की आज्ञा नहीं दी तो महर्षियों ने अतिक्रुद्ध होकर उस राजा को मंत्र से पवित्र किये हुए कुशों से मार डाला। प्रजापिता ब्रह्माजी ने वाराह कल्प के आरम्भ में वेदयज्ञमय वराह शरीर ग्रहण किया। पाराशरजी ने चौदह ग्राम्य और वनौषधियों को यज्ञानुष्ठान की सामग्री कहा है। यज्ञ इनकी उत्पत्ति का प्रधान कारण है। यज्ञों के सहित ये औषधियाँ प्रजा की वृद्धि का परम कारण हैं, इसलिए इहलोक-परलोक ज्ञाता पुरुष यज्ञों का अनुष्ठान करते हैं। नित्यप्रति किया जाने वाला यज्ञानुष्ठान मनुष्यों का परम उपकारक और उनके पापों को शान्त करने वाला है। देवता और दानवों द्वारा क्षीर समुद्र मथे जाने पर सबसे पहले हवि (यज्ञ सामग्री) उत्पन्न हुई। श्री लक्ष्मी देवी यज्ञविद्या (कर्मकाण्ड), महाविद्या (उपासना) और गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) की अधिष्ठात्री हैं। श्री विष्णु की वन्दना में मुनिजनों ने कहा—आप ही यज्ञपुरुष हैं, आपके चरणों में चारों वेद हैं, दांतों में यज्ञ है, हुताशन (यज्ञाग्नि) आपकी जिह्वा है तथा कुशाएँ रोमावलि हैं, समग्र हवि आपके प्राण हैं, साम स्वर धीर गम्भीर शब्द है, प्राग्वंश (यजमान गृह) शरीर है तथा सत्र शरीर की संधियाँ हैं, इष्ट (श्रौत) और पूर्त (स्मार्त) धर्म आपके कान हैं।

प्राय: कर्मकाण्ड का प्रारम्भ यज्ञ से ही होता है। पुराणों में यज्ञ का माहात्म्य दर्शाया गया है, किन्तु उसके करने की पद्धति का वर्णन नहीं है। ऐसे अनेक आख्यान आये हैं जिनसे यह प्रतीत होता है कि उस समय एक ऐसा समाज था जो यज्ञ का विरोधी था और दूसरा यज्ञीय अग्नि में हवन कर पारलौकिक सुख को सुनिश्चित करना आवश्यक समझता था। श्री विष्णु यज्ञपुरुष के रूप में इष्टदेव थे और यज्ञ के विरोधी दानव कहलाते थे। यज्ञ के वर्णन से यह भी प्रतीत होता है कि हमारे ऋषियों ने मंत्र और मंत्रार्थ दोनों का ही दर्शन और प्रत्यक्ष कर लिया था। आर्ष प्रत्यक्ष और हमारे प्रत्यक्ष में समानता नहीं है। अत: शास्त्र को ही प्रणाम मानकर कर्मकाण्ड की व्याख्या की जा सकती है। सभी ज्ञानों की कसौटी व विराम स्थान अपरोक्ष ज्ञान ही है।

तप-राजपुत्र ध्रुव ने यमुना तटवर्ती मधुवन में तपस्या की उसने मारीचि आदि मुनीश्वरों के उपदेश के अनुसार अपने हृदय में विराजमान निखिल देवेश्वर श्री विष्णु भगवान् का ध्यान करना आरम्भ किया। अनन्यचित्त होकर ध्यान करते रहने से उसके हृदय में भगवान् हरि सर्वतोभाव से प्रकट हुए। योगी ध्रुव के चित्त में भगवान् विष्णु के स्थित हो जाने पर सर्वभूतों को धारण करने वाली पृथ्वी का बांया आधा भाग झुक गया और फिर दायें चरण पर खड़े होने से दायां भाग झुक गया। जिस समय वह पैर के अंगूठे से पृथिवी को (बीच से) दबाकर खड़ा हुआ तो पर्वतों के सहित समस्त भूमण्डल विचलित हो गया। उस समय नदी, नद और समुद्र आदि सभी अत्यन्त क्षुब्ध हो गये और उनके क्षोभ से देवताओं में भी बड़ी हलचल मची। तब याम नामक देवताओं ने अत्यन्त व्याकुल हो इन्द्र के साथ परामर्श कर उसके ध्यान को भङ्ग करना आरम्भ किया। राक्षसगण भी 'इसको मारो मारो, काटो काटो, खाओ खाओ' इस प्रकार चिल्लाने लगे। फिर सिंह, ऊंट और मकर आदि के मुख वाले राक्षस ध्रुव को त्राण देने के लिए नाना प्रकार से गरजने लगे। किन्तु उस भगवदासक्त चित्त बालक को वे राक्षस, उनके शब्द, सियारियां और अस्त्र शस्त्रादि कुछ भी दिखायी नहीं दिये। ध्रुव एकाग्रचित्त होकर निरन्तर आश्रयभूत भगवान् विष्णु को ही देखता रहा और उसने किसी की ओर किसी भी प्रकार दृष्टिपात नहीं किया। तब सम्पूर्ण मायालीन हो जाने पर उससे हार जाने की आशंका से देवताओं को बहुत भय हुआ। वे श्री भगवान् के शरण में आये और ध्रुव को तप से निवृत्त करने की प्रार्थना की। तब भगवान् हरि ने ध्रुव की तन्मयता से प्रसन्न हो उसके निकट चतुर्भुज रूप में जाकर कहा—'अब तू अपनी इच्छानुसार श्रेष्ठ वर मांग।' ध्रुव ने कहा—'आप मुझे यही वर दीजिए जिससे मैं आपकी स्तुति कर सकूँ'। तब जगत्पति श्री गोविन्द ने

अपने सामने हाथ जोड़े हुए ध्रुव को अपने (वेदमय) शंख के अन्त (वेदान्तमय) भाग से छू दिया। तब तो एक ही क्षण में वह राजकुमार प्रसन्नमुख से अति विनीत हो अच्युत की स्तुति करने लगा। श्री भगवान् ने कहा—'हे ध्रुव! तू निःसन्देह उस स्थान में, जो त्रिलोक में सबसे उत्कृष्ट है, सम्पूर्ण ग्रह और तारामण्डल का आश्रय बनेगा। हे ध्रुव! मैं तुझे वह ध्रुव (निश्चय) स्थान देता है जो सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि आदि नवग्रहों, सभी नक्षत्रों, सप्तर्षियों और सम्पूर्ण विमानचारी देवगणों से ऊपर है। देवताओं में से कोई एक मन्वन्तर तक ही रहते हैं, किन्तु मैं तुझे एक कल्प तक की स्थिति देता हूँ।

ध्रुव के तप का दृष्टान्त यह सिद्ध करता है कि तप में यज्ञ की तरह का कोई कर्मकाण्ड नहीं है, यजमान और पुरोहित नहीं है, तथा व्यक्तिगत साधना से ही ईश्वर का साक्षात्कार होता है। यज्ञ के अनुष्ठान की अवधि होती है और उसके फल भी सीमित हैं। किन्तु तपोबल से व्यक्ति को मनोवाञ्छित सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। तप का दूसरा उदाहरण प्रचेताओं का है जिन्होंने समुद्र के जल में रहकर दस हजार वर्ष तक तप किया, तब भगवान् उन्हें अभीष्ट वर देकर अन्तर्धान हो गये और वे तल से बाहर निकल आये। ऐसा दृष्टान्त है कि दक्ष के पहले अत्यन्त प्राचीन सिद्ध पुरुषों के तपोबल से उनके संकल्प, दर्शन अथवा स्पर्श मात्र से ही प्रजा उत्पन्न होती थी। उस समय तप और प्रभाव ही ज्येष्ठता का कारण होता था। पुराण में तप के नष्ट होने की भी बात कही गई है।

जप-जब तप नष्ट हो जाता है तो ब्रह्मपार नामक स्तोत्र का जप करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। वह मन्त्र इस प्रकार है—'श्री विष्णु भगवान् संसार मार्ग की अन्तिम अवधि हैं, उनका पार पाना कठिन है, वे पर (आकाशादि) से भी पर अर्थात् अनन्त हैं, अतः सत्यस्वरूप हैं। तपोनिष्ठ महात्माओं को ही वे प्राप्त हो सकते हैं, क्योंकि वे पर (अनात्म-प्रपञ्च) से परे हैं तथा पर (इन्द्रियों) के अगोचर परमात्मा हैं और (भक्तों के) पालक एवं (उनके) अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हैं। वे कारण (पंचभूत) के कारण (पंचतन्मात्रा) के हेतु (तामस-अहंकार) और उसके भी हेतु (महत्व) के हेतु (प्रधान) के भी परम हेतु हैं और इस प्रकार समस्त कर्म और कर्त्ता आदि के सहित कार्यस्वरूप से स्थित सकल प्रपंच का पालन करते हैं। ब्रह्म ही प्रभु हैं, ब्रह्म ही सर्वजीत रूप है और ब्रह्म ही प्रजा का पति (रक्षक) तथा अविनाशी है। वह ब्रह्म अवयव, नित्य और अजन्मा है तथा वही क्षय आदि समस्त विकारों से शून्य विष्णु हैं। क्योंकि वह अक्षर, अज और नित्य ब्रह्म ही पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हैं, इसलिए (उनका नित्यअनुरक्त होने के कारण) मेरा राग आदि दोष शान्त हो'। इस ब्रह्मपार नामक परम स्तोत्र का जप करते हुए श्री केशव की आराधना करने से मुनीश्वरों ने परम सिद्धि प्राप्त की। जो पुरुष इस स्तव को नित्यप्रति पढ़ता या सुनता है वह काम आदि सकल दोषों से मुक्त होकर मनोवाञ्छित फल प्राप्त करता है। जप में मंत्र की प्रधानता है। तप की तरह यह भी व्यक्तिगत प्रयास से सिद्ध होता है। तप और जप में किसी पुरोहित की आवश्यकता नहीं है, किन्तु इन दोनों कर्मों का मनोवाञ्छित फल प्रत्यक्ष प्रमाण है।

संस्कार-श्री विष्णुपुराण में चातुर्वर्ण्य धर्म का वर्णन तथा ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों के साथ-साथ जातकर्म, नामकरण और विवाह आदि द्वारा मनुष्यों के षोडश संस्कारों का वर्णन है। जो पुरुष इन संस्कारों तथा गृहस्थ सम्बन्धी सदाचार पालन करते हैं वे इहलोक और परलोक दोनों में पतित नहीं होते। श्रद्धा सहित श्राद्ध करने से मनुष्य ब्रह्मा, इन्द्र, रूद्र, अश्विनी कुमार, सूर्य, अग्नि, वसुगण, मरुद्गण, विश्वदेव, पितृगण, पक्षी, मनुष्य, सरीसृप, ऋषिगण तथा भूतगण आदि सम्पूर्ण जगत् को प्रसन्न कर देते हैं। परन्तु कोई भी सदाचार का उलंघन करके सद्गति नहीं पा सकता।

पुराण में संस्कार विधियों का वर्णन नहीं है, परन्तु इसके महत्त्व को दर्शाया गया है—'एक अंगुल का आठवां

भाग भी कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ कर्मबन्धन से बंधे जीव न हों। किन्तु भगवान् मधुसूदन के शरणागत व्यक्तियों को जिनकी यम और नियम के द्वारा पापराशि दूर हो गई हो, जिनका हृदय निरन्तर अच्युत में ही आसक्त रहता है तथा जिनमें गर्व, अभिमान और मात्सर्य का लेश भी नहीं रहता है उन मनुष्यों पर यमराज का शासन नहीं चलता। जो पुरुष वर्णाश्रम धर्म का पालन करते हैं, विष्णु ही का भजन करते हैं, अपने वर्ण के लिए विहित धर्माचरण करते हैं, सम्पूर्ण प्राणियों से मैत्री रखते हैं, उनसे गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं।

तृतीय अंश

अध्यात्म विज्ञान–ईश्वर का पृथ्वी पर अवतीर्ण होना, अव्यक्त का व्यक्त होना, भारतीय दर्शन और हिन्दूधर्म की विशेषता है। ऐसा कहा गया है कि जब–जब धर्म की ग्लानि होती है, पृथ्वी भार से पीड़ित होकर अपने आप को धारण करने में असमर्थ होती है तो उस समय श्रीहरि अवतरित होते हैं। संसार की रक्षा के लिए भगवान् पुण्डरीकाक्ष देवकी के गर्भ से अवतरित हुए। भगवान् का आविर्भाव होते ही लीलाएँ प्रारम्भ हुई—योगमाया द्वारा कंस की वंचना, वासुदेव देवकी का कारागार से मोक्ष, पूतना वध, शकट भंजन, यमलार्जुन उद्धार, कालिय दमन, धेनुकासुर वध, प्रलम्ब वध, वृषभासुर वध, केशि वध, कंस वध, शम्बर वध, रुक्मी वध, नरकासुर वध आदि। इस प्रकार दुष्ट दलन के साथ–साथ अन्य लीलाओं, श्री कृष्ण का गोवर्धन धारण, गोपियों के साथ रासक्रीड़ा। उग्रसेन का राज्याभिषेक, रुक्मिणी हरण, पारिजात हरण तथा अन्त में अर्जुन के साथ मिलकर अट्ठारह अक्षौहिणी सेना को मारकर पृथ्वी का भार उतार कर भगवान् का स्वधाम सिधारना आदि प्रकृति पुरुष की लीला है जिसमें भारतीय दृष्टि प्रत्यक्ष होती है। यही अध्यात्म विज्ञान की अवधारणा है।

कर्मकाण्ड का अर्थ और जीवन में उसकी उपादेयता को समझने के प्रयास में आधुनिक विज्ञान के रहस्यों को जानना आवश्यक नहीं है। आधुनिक विज्ञान प्रत्यक्ष और प्रयोग के आधार पर रहस्यमयी प्रकृति का विश्लेषण करता है। अध्यात्म विज्ञान योगी–प्रत्यक्ष, अपरोक्षानुभूति एवं तर्क प्रतिष्ठान पर आश्रित है। वेद का एक नाम श्रुति है जिसे आधुनिक लोग सुनी सुनाई बात कहते हैं। वेदान्त दर्शन में वेद को प्रत्यक्ष और स्मृति को अनुमान कहते हैं। हमारे ऋषियों ने मंत्र एवं मंत्रार्थ दोनों का ही दर्शन अथवा प्रत्यक्ष किया था। आधुनिक विज्ञान की बहुत सारी अवधारणायें प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्त से मिलती हैं। ऋषियों ने ब्रह्माण्ड (वृहप्रसरणशील) का अभास कराया था—सहस्रशीर्ष, सहस्राक्ष, सहस्रपात पुरुष जो समस्त भूमि को सभी ओर से स्पर्श करते हुए भी 'अत्यतिष्ठद् दशांगुलम्' (दश अंगुल बढ़रहा है) इस तथ्य को आधुनिक विज्ञान भी आज मानने लगा है। भारतीय दर्शन में शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र का अर्थ ही है ऐसा कुछ मापदण्ड या कसौटी जिसके द्वारा अपने निजस्व, प्रत्यक्ष आदि ज्ञानों की बुद्धि विवेचन की परीक्षा करके, उसका शासन करके मांज लेना। श्री विष्णुपुराण हमारा शास्त्र है। श्री विष्णु सर्वव्यापी हैं, वे स्वयं विश्वात्मा हैं।

कर्मकाण्ड हमारी समस्त बुद्धिवृत्तियों का विनियोग करने के लिए है। इसमें यज्ञ की प्रधानता है। यह एक ऐसा प्रयोग विज्ञान है जो मनुष्य को अंकगणित और रेखागणित द्वारा पृथ्वी एवं आकाश के तत्त्वों को आत्मसात् करने की क्षमता देता है। मत्स्यपुराण के अनुसार जिस कर्मविशेष में देवता, हवनीय द्रव्य, वेद मंत्र, ऋत्विज् और दक्षिणा इन पांचों का संयोग हो उसे यज्ञ करते हैं। यज्ञ दो प्रकार के होते हैं—श्रौत और स्मार्त। श्रुति प्रतिपादित यज्ञों को श्रौत यज्ञ और स्मृति प्रतिपादित यज्ञों को स्मार्त यज्ञ कहते हैं। श्रौत यज्ञ में केवल श्रुति प्रतिपादित मंत्रों का ही प्रयोग होता है और स्मार्त यज्ञ में वैदिक, पौराणिक और तांत्रिक मंत्रों की प्रधानता रहती है। यज्ञ से देवताओं का अपयायन अथवा पोषण होता है। यज्ञ द्वारा वृष्टि होने से मनुष्यों का पालन पोषण करने के कारण यज्ञ कल्याण का हेतु कहा जाता है।

ब्रह्माजी ने यज्ञ के उत्तम साधन रूप चातुर्वर्ण्य की रचना की है। तपोबल एवं जप की सिद्धि से मनुष्य को आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है, सृष्टि की लीला का ज्ञान होता है और वह कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। कर्मकाण्ड अध्यात्म विज्ञान की भाषा है। मंत्र, मुद्रा, ध्वनि और पुरोहित के चतुर्भुज के मध्य में ईश्वर एक बिन्दु है जिसके द्वारा चिदाकाश अथवा चैतन्यरूपी आकाश को देखा जा सकता है। अध्यात्म विज्ञान और भौतिक विज्ञान की शैली भिन्न है परन्तु शैली भिन्न होने पर भी सृष्टि विज्ञान के विषय को लेकर उनमें अधिकतर समता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. के. ए. सुब्रह्मण्य अय्यर, *भर्तृहरि, ए स्टडी इन दी वाक्यपदीय इन दी लाइट आफ दी एन्सियन्ट कमेन्ट्रीज*, पूना, 1969
2. वैद्यनाथ सरस्वती, *रिचुअल लैंगुएज*, वाराणसी, 1982
3. *श्री श्रीविष्णुपुराण*, गोरखपुर
4. सर जान उडरौफ, *दी गरलेन्ड आफ लेटर्स : स्टडी इन दी मंत्र शास्त्र, मद्रास*, 1955

* * *